शैवसर्वस्व ।

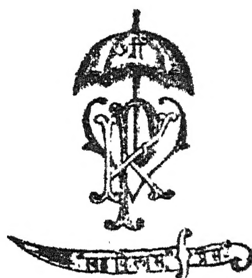
अर्थात्

शिवालय, शिवमूर्ति और शिव पूजा की मुख्य
मुख्य बातों का गूढ़ार्थ

जिसे शिव भक्तों के मनोरंजन तथा
सर्व साधारण के हितार्थ

प्रेमदास प्रसिद्ध प्रतापनारायण मिश्र ने

लिखा ।



पटना—"खड्गविलास" प्रेस बांकीपुर ।

साहब प्रसाद सिंह ने छाप कर प्रकाशित किया ।

१८९०.

पहली बार
१००० छापी

दाम चार आना ।

समर्पण

प्यारे भोलानाथ !

तुम्हारा भोलापन तो मूर्तिपर पांव रख के घंटा कोरने वाले चोर को आत्म समर्पक की गति देने इत्यादि से प्रसिद्ध ही था पर हम भी तुम्हें ऐसे ही पागल मिले हैं जो यह जान के भी कि सब कुछ तुम्हारा ही है समर्पण किए बिना नहीं मानते तथा किसी काम के न होने पर भी तुम्हारे कहलाने को मरे जाते हैं यदि इतने पर भी न अपनाओ तो क्या बस है !

कानपूर, श्रावण शुक्ला १४.
श्रीहरिचन्द्राब्द ४.

तुम्हारा ही
प्रेमदास ।

नम: श्री हरिश्चन्द्राय।

उपक्रम।

आजकल श्रावण का महीना है, वर्षारितु के कारण भूमण्डल एवं गगन मण्डल एक अपूर्व शोभा धारण कर रहे हैं; जिसे देख के पशु पक्षी नर नारी सभी आनन्दित होते हैं। काम धन्धा बहुत अल्प होने के कारण सब ढंग के लोग अपनी २ रुचि के अनुसार मन बहलाने में लगे हैं, कोई बागों में भूला डाले मित्रों सहित चन्द्रमुखियों के साथ मद माती आंखोंसे हरियाली देखने में मग्न है! कोई लंगोट कसे भंग छाने व्यायाम में संलग्न है! कोई भोर सांझ नगर के बाहर की वायु सेवन ही को सुख जानता है! कोई स्वयं तथा ब्राह्मण द्वारा भगवान भूतनाथ के दर्शन पूजनादि में लौकिक और पारलौकिक कल्याण मानता है! संसार में भांति २ के लोग हैं उन की रुची भी न्यारी २ है भक्त भी एक प्रकार के नहीं होते कोई बकुला भक्त हैं अर्थात् दिखाने मात्र के भक्त पर मन जैसे का तैसा! कोई पेटहुल भक्त हैं अर्थात् यजमान से दक्षिणा मिलनी चाहिए और काम न किया पूजाही सही! कोई व्यवहारी भक्त हैं अर्थात् 'या महादेव बाबा! भेजना तो छप्पन करोड़ की चौथाई' इन्हीं में वह भी हैं जो संसारी पदार्थ तो नहीं चाहते पर मुक्ति अथवा कैलाश बास पर मरे धरे हैं! कोई भगत जी हैं जो रास्ते में भी मन्दिर में आंखें सेंकने ही को पूजा की आड़ पकड़ते हैं! पर हम इन भक्ताभासों की

कथा न कह के श्री विश्वनाथ विश्वंभर के सच्चे प्रेमियों के मनोविनोदार्थ कुछ शिवमूर्ति और उन की पूजा पर अपना विचार प्रगट करते हैं।

ईश्वर का नाम शिव है, यह बात वेद * से लेके भाषा गीतों † तक में प्रसिद्ध है! और मूर्तिपूजन हमारे यहां उस काल से चला आता है जिस का ठीक २ पता भी कोई नहीं लगा सकता! जिस देश में शिल्प विद्या का प्रचार और जहां लोगों के जी में स्नेह एवं सहृदयता का उद्गार होगा वहां मूर्ति पूजा किसी के हटाए नहीं हट सकती! मुहम्मदीय मत जब तक अरब के अशिक्षितों में रहा तभी तक प्रतिमा पूजन से बचा रहा जहां फारस के रसिकों में पहुंचा टक्क 'शीया' सम्प्रदाय नियत हो गई! इसी प्रकार खृष्टीय मत जब तक तुर्किस्तान में रहा वहां के प्रेम की यह दशा कि खुद हजरत ईसा को उन के चुने हुए बारह शिष्यों में से एक शिष्य यहूदाह इस्करोती ने केवल तीस रुपए के लोभ से प्राण ग्राहक शत्रुओं के हाथ सौंप दिया ऐसे देश में मूर्ति पूजा क्या होती जहां साक्षात ही पूजा के लाले पड़े थे! परन्तु रूम में मसीही धर्म को जाते देर न हुई कि महात्मा मसीह की प्रतिकृति पुजने लगी, रोमन केथोलिक मत फैल गया! जब नए मतों की यह दशा है तो हमारे सनातन धर्म में मूर्ति पूजा क्यों न हो? जहां प्रेम की उमंग में

---

* त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धम्, पुष्टिवर्द्धनं इत्यादि।

† शंकर सम देव सेवक सुख आखे इत्यादि।

स्त्रियां तक जीती जल जाती रही हैं ! और शिल्प विद्या धर्म ग्रन्थ (अर्थ वेद) में भरी है ! जहां राजाओं और वीर पुरुषों तक की मूर्ति का आदर है वहां देवाधि देव महादेव की मूर्ति क्यों न पूजी ? यद्यपि आज काल अविद्या के प्रभाव से सब बातों के तत्व के साथ प्रतिमा पूजन का भी तत्व लोग भूल गए हैं पर जिन्हें कुछ भी इधर श्रद्धा है वे इस लेख पर कुछ भी ध्यान देंगे तो कुछ भेद तो अवश्य ही पावेंगे।

यह सब लोग मानते हैं कि ईश्वर निराकार है पर मनुष्य अपनी रुचि और दशा के अनुसार उस के विषय में कल्पना कर लिया करते हैं। जिन मतों में प्रतिमा पूजन का महा महानिषेध है उन के धर्म ग्रंथों * में भी ईश्वर के हाथ पांव नेत्रादि का वर्णन है फिर हमारे पूर्वजों के लेखों का तो कहना ही क्या है; जिन की कल्पनाशक्ति के विषय में हम सच्चे अभिमान से कह सकते हैं कि दूसरे देश वालों को वैसी २ बातें समझनी ही कठिन हैं सूझने की तो क्या कथा ! उन की छोटी २ बातों में बड़े २ आशय हैं (इस विषय दूसरी पुस्तक में लिखा गया है) फिर यह तो धर्म का अंग है इसका क्या कहना !

तनिक ध्यान देके देखिए तो निश्चय कह उठिएगा कि जिन्हों ने पहिले पहिल यह बातें निकाली थीं वे ब्रह्म विद्या ; लोकहितैषिता और सहृदयता में निरा देव तुल्य

---

* इंजील तथा कुरआन आदि ।

भर के बुद्धिमानों के शिरोमणि थे। शिवालय, शिवमूर्ति अथच शिवार्चन में सामाजिक, शारीरक एवं आत्मिक उपदेश इतने भरे हुए हैं कि बड़े २ बुद्धिमान बड़े २ ग्रंथ लिख के भी इति श्री नहीं कर सकते हमारी छोटी सी बुद्धि द्वारा यह छोटी सी पुस्तिका तो समुद्र में से जलकण के सदृश भी नहीं है।

शिवालय की बनावट देखिए तो ऊपर का गुम्बद गोल होता है जिस से चाहे जितना जल बरसे कुछ क्षति नहीं कर सकता इधर बूंद गिरी इधर भूमि पर आई! वर्षा में बड़े २ घर गिर जाते हैं पर कोई छोटी सी शिवलियां कदाचित बहुत ही कम सुना होगा कि गिरपड़ी इस के अतिरिक्त भूगोल खगोल ग्रह नक्षत्र सब गोल हैं और परमात्मा सब का स्वामी सब में व्याप्त है यह बात भी शिवमंदिर में उपदिष्ट होते हैं। उस में चारों ओर द्वार होते हैं जिन से सदा स्वच्छ वायु का गमनागमन रहने से रोगोत्पत्ति की संभावना नहीं रह-ती ऊपर से यह भी ज्ञात होता है कि परमेश्वर के पास जाने को किसी ओर से रोक नहीं है सब मार्गों से वुह हमें मिल सकते हैं! हिंदूधर्म, जयनधर्म, क्रिस्तानी धर्म, मुसल-मानी धर्म सब के द्वारा हमारा प्रभु हमें मिल सकता है "रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिल नाना पथ जुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव" केवल मिलने की इच्छा चाहिए! आगे चलिए तो पहिले बिना धार का धातु अथवा पाषाण निर्मित त्रिशूल देख पड़ेगा जिस के कारण शिवा-

नय पर बिजली गिरने का कभी भय नहीं रहता। बड़े २ तत्ववेत्ता (फ़िलासफ़र) कहते हैं कि जिस मकान के पास लोहे कांसे आदि की लंबी छड़ गड़ी होगी उस पर बिजली नहीं गिर सकती क्योंकि धातुओं की आकर्षण शक्ति से वह सीधी धरती में समा जाती है इस से घर की रक्षा रहती है पाषाण का त्रिशूल बहुत थोड़े मंदिरों में होते हैं उस में यह गुण तो नहीं हैं पर यह उपदेश दोनों प्रकार के त्रिशूल देते हैं कि मनुष्य के शरीरक, सामाजिक एवं मानसिक दौर्बल्य जनित भय, सदा डराया करते हैं कि देखो शिव के शरण जाओगे तो तुम्हारे संसारी मित्र तुम्हें पागल समझेंगे! तुम्हारा शरीर और मन विषय सुखों से बंचित रह के दुख चिपावैगा! अथवा कायिक, वाचिक, मानसिक कुवासना बड़े २ लालच दिखाया करती हैं कि हमारे साथ रहने में जीवन का साफल्य है नहीं तो और संसार में धरै क्या? पर यदि तुम इन संकल्प बिकल्प जनित भय लालच शंकादि की कुछ भटक न करके आगे ही पांव उठाए जाव तो निश्चय हो जायगा कि यह त्रिशूल देखने ही मात्र को हैं तुम्हें कुछ बाधा नहीं कर सकते! तुम जब तक शिव के सम्मुख होने को कटि बद्ध न थे तभी तक भ्रमोत्पादन करने मात्र की शक्ति इन में थी! आगे बढ़िए तो कीर्तिमुख नामक गण की झांकी होगी, (बहुधा शिवालयों में अरघा के पास वा कुछ दूर पर मनुष्य का सा सिर बना रहता है वही कीर्ति मुख हैं) इन के विषय पुराणों में लिखा है कि एक बार क्षुधित हुए

शिवजी से न्याने को मांगा तो उन्होंने कहा कि यहां क्या रक्खा है अपने ही हाथ पांव खा डालो ! इस पर इन्होंने ऐसा ही किया ! तब से यह भोलानाथ को अत्यंत प्यारे हैं !! इस कथा का मुख्योद्देश्य यह है कि प्रियतम की आज्ञा से यहां तक मुंह न मोड़ो तो निश्चय देह वुह कल्याण मय तुम्हें अतिशय प्यार करेगा !!! कीर्तिमुख जी के दर्शन कर के श्री १०८ नागरी दास जी के इस प्रेममय वचन का स्मरण करो तो एक अनिर्वचनीय स्वादु पाओगे मानो स्वयं कीर्तिमुख ही आज्ञा कर रहे हैं कि "सीस काटि आगे धरौ तापर राखौ पांव । इश्क़ चमन के बीच में ऐसा हो तो आव ॥१॥" और कुछ आगे श्री नंदिकेश्वर जी के दर्शन होंगे, जिन्हें लड़के बूढ़े सभी जानते हैं कि महेश्वर जी के वाहन हैं मुख्य गण हैं, उन्हें बहुत प्रिय हैं वरंच वे वही हैं ! यह इस बात का रूपक है कि यदि हम परमेश्वर के अभिन्न मित्र हुआ चाहें तो हमें चाहिए कि अपने मनुष्यत्व का अभिमान यहां तक छोड़ दें कि मानो हम बैल हैं ! पर स्मरण रक्खो बैल बनना सहज नहीं है ! अपना पेट घास ही भूसे से भरना पर लोकोपकारार्थ सदा सब रीति से प्रस्तुत रहना ! विशेषत: कृषिविद्या जो एक समय भारत संपत्ति का मूल थी, (उत्तम खेती मध्यम बान) आज तक प्रसिद्ध है पर समय के फेर से इन दिनों लुप्त सी हो गई है उस के लिए जीवन भर बिता देना बैल ही का काम है ! या यों कहो शंकर स्वामी के परम मित्र का धर्म है ! कठिन परिश्रम कर के दूसरों के लिए अन्न

वस्त्र उपजाना—कैसा ही बोझ उठाना हो, कैसे ही शीत उष्ण अथवा मेह के बन बीहड़ में जाना हो, कभी हिम्मत न हारना—मर जाने पर भी पृथ्वी सींचने को पुर, लोगों की पद रक्षा के लिए जूती, वस्त्राभरण धरने को संदूक, कठिन वस्तु जोड़ने को सरेस इत्यादि ही से प्राप्त होता है यदि हम भी ऐसे ही बन जायें कि अपने दुख सुख की चिंता न कर के संसार के उपकार में धैर्य के साथ श्रम करते रहें! जगत के हितार्थ कहीं जाना हो कुछ ही करना हो कभी शिथिर मिथिर न करें! दृढ़ आचरण रक्खें कि हमारे मरणानंतर भी हमारे किए हुए कामों तथा लिखे हुए वचनों से पृथ्वी के लोगों के हृदय प्रेम जल से सिंचित हों, लोग स्वदेशोन्नति के पथावलंबन में सहारा पावें, देश भाई अपनी श्रद्धा रूपी पूंजी का आधार बनावें, तथा पाषाण सदृश चित्त वाले भी आपस का मेल सीखें बस तभी हम विश्वनाथ के प्यारे होंगे! तभी शुद्ध प्रेमदेव हमारे हृदय में आरूढ़ होगा! जिसे यह सब बातें सोझती हैं उसे शिवदर्शन दुर्लभ नहीं है यद्यपि शिवमंदिर में गणेश—सूर्य—भैरवादि की प्रतिमा भी कहीं २ देख पड़ती हैं पर उन के मुख्य पार्षद यही हैं दूसरे देवताओं के मंदिर अलग भी बनते हैं अत: उन का वर्णन यहां पर विशेष रूप से आवश्यक नहीं है इस से हमारे पाठकों को शिवदर्शन की ओर झुकना चाहिए पर यदि केवल बुद्धि के नेत्रों से देखिएगा तो पत्थर देखिएगा! हां यदि प्रेम की आंखें हों तो उस अप्रतिम की प्रतिमा तुम्हारे आगे विद्यमान है!

शिवमूर्ति इस को मन लगा के देखिए यह हमारे प्रेमदेव भगवान भूतनाथ सब प्रकार से अकथ्य अप्रतर्क्य एवं अचिंत्य हैं तौभी भक्तजन अपनी रुचि के अनुसार उन का रूप, गुण, स्वभाव कल्पित कर लेते हैं उन की सभी बातें सत्य हैं अत: उन के विषय में जो कुछ कहा जाय सब सत्य है! मनुष्य की भांति वे नाड़ी आदि बंधन से बद्ध नहीं हैं इस से हम उन्हें निराकार कह सकते हैं और प्रेमचक्षु से अपने मनोमंदिर में दर्शन कर के साकार भी कह सकते हैं। उनका यथातथ्य वर्णन कोई नहीं कर सकता तौभी जितना जोकुछ अभी तक कहा गया है और आगे के मननशील कहेंगे वुह सब शास्त्रार्थ के आगे निरी बक २ है और विश्वास के आगे मन: शांति कारक सत्य है !!! महात्मा कबीर ने इस विषय में सच कहा है कि जैसे कई अंधों के आगे हाथी आवे और कोई उस-का नाम बता दे तो सब उसे टटोलेंगे—यह तो संभव ही नहीं है कि मनुष्य के बालक की भांति उसे गोद में लेके सब जने उस के सब अवयव का ठीक २ बोध करलें एक २ जन केवल एक २ अंग टटोल सकता है और दांत टटोलने वाला हाथी को खूंटी के समान—कान छूनेवाला सूप के सदृश—पांव स्पर्श करनेवाला खंभे की नाईं कहेगा यद्यपि हाथी न खूंटे के समान है न खंभे के समान पर कहनेवाले की बात झूठ भी नहीं है उसने भली भांति निश्चय किया है और वास्तव में हाथी का एक २ अंग वैसाही है भी।

ईश्वर के विषय में मानवी बुद्धि की भी ठीक यही दशा है! हम पूरा २ वर्णन कर लें तो वह अनंत कैसे? और यदि निरा अनंत मान के हम अपने मन वचन को उन की ओर से फेर लें तो हम आस्तिक कैसे? सिद्धांत यह कि हमारी बुद्धि जहां तक है वहां तक उनकी स्तुति प्रार्थना ध्यान उपासना कर सकते हैं और इसी से हम शांति लाभ करेंगे! उन के साथ जिस प्रकार से जितना संबंध रख सकें उतनाही हमारे मन, बुद्धि, आत्मा, संसार, परमार्थ के लिए मंगल है! जो लोग केवल जगत के दिखाने तथा सामाजिक नियम निभाने को इस विषय में कुछ करते हैं वे व्यर्थ समय न बितावें जितनी देर पूजा पाठ करते हैं उतनी देर कमाने खाने पढ़ने गुनने में रहें तो उत्तम है! और जो केवल शास्त्रार्थी आस्तिक हैं वे भी व्यर्थ ईश्वर को पिता बना के माता को कलंक लगाते हैं! माता कहके बिचारे बाप को दोषी ठहराते हैं साकार कल्पना करके व्यापकता और निराकार कह के उसके अस्तित्व का लोप करते हैं! हमारा यह लेख केवल उन के लिए है जो अपनी विचार शक्ति को काम में लाते हैं, और जगदीश्वर के साथ जीवित संबंध रख के हृदय में आनंद पाते हैं; तथा आप लाभकारक बातों को समझ के दूसरों को समझाते भी हैं।

प्रियवर उसकी सब बातें अनंत हैं अतः मूर्तियां भी अनंत प्रकार की बन सकती हैं पर हमारी बुद्धि अनंत नहीं है इस से कुछ रीति की प्रतिमाओं का वर्णन करते हैं। यह

भी सब जानते हैं कि अनंत की एकर प्रति कृति का एकर अंग भी अनंत भाव अनंत भलाई अनंत सुख से भरा होना चाहिए पर हम अनंत नहीं हैं इस से थोड़ी ही सी बातों पर लेख की अंत करेंगे।

मूर्ति बहुधा पाषाण की होती है इस का यह भाव है कि उन से हमारा दृढ़ संबन्ध है! (दृढ़ पदार्थों की उपमा पाषण से दी जाती है) हमारे विश्वास की नेव पत्थर पर है! हमारा धर्म पत्थर का है! ऐसा नहीं है कि सहज में और का और हो जाय! बड़ा सुभीता यह भी है कि एक बेर प्रतिमा पधराय दीं कई पीढ़ियों को छुट्टी हुई, चाहे जैसे असावधान पूजक आवैं कुछ हानि नहीं हो सकती।

धातु विग्रह का यह तात्पर्य है कि हमारा प्रभु द्रवण शील अर्थात् दयामय हैं! जहां हमारे हृदय में प्रेमाग्नि धधकी वहीं वुह हम पर पिघल उठे। यदि हम सच्चे तदीय हैं तो वह हमारी दशा के अनुसार हमारे साथ वर्ताव करें: गे! यह नहीं कि ईश्वर अपने नियम पालन से काम रखता है कोई मरे चाहे जिए!

रतनमयी प्रतिकृतिका यह अर्थ है कि हमारा ईश्वरीय संबंध अमूल्य है! जैसे पन्ना पुखराज आदि की मूर्ति बिना एक गृहस्थी भर का धन लगाए हाथ नहीं आती यह बड़े अमीर का साध्य है वैसेही प्रेम स्वरूप परमात्मा भी हम को तभी मिलेंगे जब हम ज्ञानाज्ञान का सारा अभिमान खोदें! यह भी बड़े ही मनुष्य का काम है।

मृत्तिकामयी प्रतिमा का प्रयोजन है कि उन की सेवा हम सब ठौर कर सकते हैं जैसे मट्टी और जल का अभाव कहीं नहीं हैं ऐसे ही उन का वियोग भी कहीं नहीं है! धन और गुण का भी उन के मिलने में काम नहीं है! वे निरधनों के धन हैं! जिसे जीवनयात्रा का कोई सहारा नहीं वुह मट्टी बेंच के पेट पाल सकता है योंही जिसे कहीं गति नहीं उस के सहायक कैलाशवासी हैं! सब पदार्थ का आदि मध्यावसान ईश्वर के सहारे है इस बात का दृष्टांत भी मृतिका ही पर खूब घटता है इस के अतिरिक्त पार्थिवेश्वर का बनना भी बहुत सहज है लड़के भी माटी सान कि निर्मान कर लेते हैं यह इस बात की सूचना है 'हुनरमंदों से पूछे जाते हैं वां बेहुनर पहिले'!

गोबर का स्वरूप यह प्रगट करता है कि ईश्वर आत्मिक रोगों का नाशक है! हृदय मंदिर की कुबासना रूपी दुर्गंध वही दूर करता है।

पारदेश्वर (पारे की मूर्ति) यह प्रकाश करते हैं कि परमेश्वर हमारे पुष्टिकारक हैं 'सुगंधम्पुष्टि वर्द्धनं' वेद वाक्य है'।

यदि मूर्ति बनाने बनवाने की सामर्थ्य न हो तो पृथिवी जल आदि अष्टमूर्ति बनी बना‌ई विद्यमान हैं! वास्तविकप्रेम मूर्ति मन के मंदिर में है ही पर तौभी यह दृश्य मूर्तियां भी निरर्थक नहीं हैं! इन के कल्पना करनेवालों की विद्या और बुद्धि प्रतिमानिंदकों से अधिकही थी! मूर्तियों के रंग भी

यद्यपि अनेक होते हैं पर मुख्य रंग तीन ही हैं ? श्वेत२ रक्त ३ श्याम और सब इन्हीं का विकार हैं इस से इन्हीं का वर्णन आवश्यक है उस में—

पहिले श्वेत रंग की प्रतिमा से यह सूचित होता है कि परमेश्वर शुद्ध एवं स्वच्छ है 'शुद्धमपापविद्ध' उसकी किसी बात में किसी का कुछ मेल नहीं है वुह 'वहदहूला शरीक' है पर सभी उस के आश्रित हैं जैसे उजला रंग सब रंगों का आश्रय है वैसेही सब का आश्रय परब्रह्म है ! सर्वेरसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ। उत्पद्यंते वीलियंते यत्र सः प्रेम संज्ञकः' वुह त्रिगुणातीत तो हई पर त्रिगुणालय भी उसके बिना कोई नहीं है औ यदि उसे सतोगुणमय भी कहें (सतोगुण श्वेत है) तो कोई बेअदबी नहीं है !

दूसरा लाल रंग रजोगुण का द्योतक है यह कौन कह सकता है कि यह संसार भर का ऐश्वर्य किसी अन्य का है कविता के आचार्यों ने अनुराग का भी अरुण वरण वर्णन किया है फिर अनुराग देवका रंग और क्या होगा ? काले रंग का तात्पर्य सभी सोच सकते हैं कि सब से पक्का यही है ! इसपर दूसरा रंग नहीं चढ़ता ! योंही प्रेम देव सब से अधिक पक्के हैं उन पर दूसरे का रंग क्या जमेगा ? इस के सिवा दृश्यमान जगत के प्रदर्शक नेत्र हैं उन की पुतली काली होती है ! भीतर का प्रकाश का प्रधान है उस की प्रकाशिनीविद्या है जिसकी सारी पुस्तकें कालीही स्याही से लिखी जाती हैं ! फिर कहिए जिसे भीतर बाहर का

प्रकाश है ! जो प्रेमियों को आंख की पुतली से भी प्यारा है; जो अनंत विश्रामय है 'सर्वेवेदायत्रचैकीभवंति' उस का और कौन रंग मानें ? हमारे रसिक पाठक जानते हैं किसी सुन्दर व्यक्ति के नयन में काजल और गोरे गालों पर तिल कैसा भलालगता है कि कवियों की पूरी शक्ति और रसज्ञों का सर्वस्व एक बार उस छवि पर निछावर हो जाता है; फिर कहिए सर्व शोभामय परमसुन्दर का कौन रंग कल्पना कीजिएगा ? समस्त शरीर में सर्वोपरि शिर है उस पर केश कैसे होते हैं ? फिर सर्वोत्कृष्टमहेश्वर का और क्या रंग होगा ? यदि कोई लाखों योजन का बहुत बड़ा मैदान हो, और रात को उस का अन्त लिया चाहो तो सौ दो सौ दीपक जलाओगे, पर क्या उन से उस स्थल का छोरदेख लोगे ? नहीं, जहां तक दीपों का प्रकाश है वहीं तक कुछ सूझेगा फिर बस 'तमासा गूढ़मग्रे' ऐसेही हमारे बड़े २ महर्षियों की बुद्धि जिसका भेद नहीं प्रकाश कर सकती उसे अप्रकाशवत् न मानें तो क्या मानें ? श्रीरामचन्द्र कृष्णचन्द्रादि को यदि अंगरेजी ज़मानेवाले ईश्वर न भी मानें तौभी यह मानना पड़ेगा कि हमारी अपेक्षा उन से और ईश्वर से अधिक संबन्ध था फिर हम क्यों न कहें कि यदि उस परात्पर का कुछ अस्तित्व है तो रंग यही होगा क्योंकि उसके निज के लोग कई एक इसी रंग ढंग के हैं सब आकारों का विचार कीजिए तो अधिकतः शिवमूर्त्ति लिंगाकार होती है जिस में हाथ पांव मुख नेत्र कुछ नहीं होते; सब

मूर्त्तिपूजक कहते हैं कि हम प्रतिमा को स्वयं ब्रह्म नहीं मानते न यही मानते हैं कि यह उस की यथातथ्य प्रकृति है; केवल परम देव की सेवा करने तथा अपना मन लगाने के लिए एक संकेत तथा चिन्ह नियत करलेते हैं यह बात आदि में शैवों के ही घर से निकली है क्योंकि लिंग शब्द का अर्थ ही चिन्ह है ! और सच भी यही है जो वस्तु बाहरी नेत्रों से देखी नहीं जाती उसकी ठीक २ मूर्त्ति ही क्या ? आनंद की कैसी मूर्ति, दुःख की कैसी मूर्ति, राग रागिनियों की कैसी मूर्ति ? केवल मनः कल्पना द्वारा उस के गुणों का कुछ२ द्योतन करने के योग्य कोई संकेत; बस ठीक इसी प्रकार ज्योतिर्लिंग है ! सृष्टिकर्तृत्व, अचिंत्यत्व, अप्रतिमत्वादि कई बातें लिंगाकार मूर्ति से ज्ञात होती हैं ! ईश्वर कैसा है यह बात पूर्णरूप से कोई नहीं कह सकता ! अर्थात् उस की सभी बातें गोलमाल हैं; बस यही बात गोल मठोल ठीक मूर्ति भी सूचित करती है ! यदि 'नतस्य प्रतिमास्ति' इस वेद वचन का यही अर्थ है कि ईश्वर के प्रतिमा नहीं है तो इस का ठीक रूप के शिवलिंग ही है क्योंकि जिस्में हस्त पादादि कुछ नहीं हैं उसे प्रतिमा कौन कहेगा ! पर यदि कोई मोटी बुद्धि वाला कहे कि यदि कुछ अवयव ही नहीं है तो यही क्यों नहीं कहते कि कुछ नहीं ही है ! तो हम उत्तर दे सकते हैं कि आंखें हों तो देखो फिर धर्म से कहना कि कुछ है अथवा नहीं है ! तात्पर्य यह है कि 'कुछ है' एवं 'कुछ नहीं है' यह दोनों बातें ईश्वर के विषय में न हां कही

जासकें न नहीं कहते बनें और हां कहना भी ठीक है तथा नहीं कहना भी ठीक है 'का कहिए कहते न बने कछु है कि नहीं कछु है न न नहीं है' क्योंकि ईश्वर तो मन वचनादिका विषय ही नहीं है वहां केवल अनुभव का काम है इसी भांति शिव मूर्ति भी समझ लीजिए कुछ नहीं है तौ भी सभी कुछ है! वास्तव में यह विषय ऐसा है कि जितना सोचा समझा कहा जाय उतनाही बढ़ता जायगा, बकनेवाला जन्मभर बके पर सुननेवाला यही जानेगा कि अभी श्री गणेशायनमः हुई है! इसी से महात्मा लोग कह गए हैं कि 'ईश्वर को वाद में न ढूंढ़ो वरंच विश्वास में' इसलिए हम भी उत्तम समझते हैं कि सावयव मूर्तियों कि वर्णन की ओर झुकें! क्योंदि यदि पाठकगण विश्वास साथ भजन करेंगे तो आप उस रूप का अरूप समझने लगेंगे हम रूपवान को उपासक हैं हमें अरूप से क्या! हमारे लिए तो उन्हें भी रूप धारण करना पड़ता है!

जानना चाहिए कि जो जैसा होता है उस की कल्पना भी वैसीही होती है! यह संसार का स्वाभाविक धर्म हैं! जो वस्तु हमारे आस पास हैं उन्हीं पर हमारी बुद्धि दौड़ती है! फ़ारस अरब और इंगलिस्तान के कवि जब संसार की अनित्यता का वर्णन करने लगेंगे तब क़बरिस्तान का नक़शा खींचेंगे क्योंकि उनके यहां स्मशान होते ही नहीं हैं वे यह न कहें तो क्या कहें कि (कि बड़े २ बादशाह ख़ाक में दबे पड़े हैं यदि क़ब्र का तख़्ता उठाकर

देखा जाय तो शायद दो चार हड्डियां निकलेंगी जिनपर यह नहीं लिखी कि यह सिकंदर की हड्डी है यह दारा की इत्यादि) हमारे यहां उक्त विषय में स्मशान का वर्णन होगा (शिर पीड़ा जिन की नहीं हेरी। करत कपाल क्रिया तिन केरी ॥ फूल बोझहू जिन न संभारे। तिन पर बोझ काठ बहु डारे ॥ इत्यादि) क्योंकि क़बरों की चाल यहां विदेशियों की चलाई है। यूरोप में सुन्दरता वर्णन करेंगे तो अलकावली का रंग काला कभी न कहेंगे और हिंदुस्तान में ताम्र वर्ण के केश सुन्दर न समझे जायगे ! ऐसे ही सब बातों में समझ लीजिए तब जान जाइएगा कि ईश्वर के विषय में बुद्धि दौड़ानेवाले सदा सब ठौर मनुष्य ही हैं। अतः सब कहीं उसके स्वरूप की कल्पना मनुष्य के स्वरूप के समान की गई है, क्रिस्तानों और मुसलमानों के यहां भी कहीं २ ख़ुदा के दाहिने तथा बाएं हाथ का वर्णन है ! वरंच यह खुला हुवा लिखा है कि उसने आदम को अपनी सूरत में बनाया ! पादरी साहब तथा मौलवी साहब चाहे जैसी उलट फेर की बातें कहें पर इस का यह भाव कहीं न जायगा कि अगर खुदा की कोई शकल है तो आदम ही की सी शक्ल होगी ! हो चाहे जैसा पर हम यदि ईश्वर को अपना आत्मीय मानेंगे तो अवश्य ऐसा ही मानना पड़ेगा जैसों से प्रत्यक्ष में हमारा संबंध है ! हमारे माता पिता भाई बहिन राजा रानी गुरु गुरुपत्नी इत्यादि जिन को हम अपने प्रेम प्रतिष्ठा का आधार मानते हैं उन

सब की हमारी ही भांति हाथ पांव इत्यादि हैं तो हमारा सर्वोत्कृष्ट बंधु कैसा होगा ? बस इसी मूल पर सब साधयव मूर्तियां मनुष्य के से रूप की बनाई जाती हैं ! विष्णुदेव की सुंदर सौम्य प्रतिमा प्रेमोत्पादनार्थ हैं क्योंकि खूबसूरती पर चित्त अधिक लगता है ! भैरवादि की भयानक प्रतिकृति इस सूचना के अर्थ हैं कि हमारा प्रभु हमारे शत्रुओं के हेतु भयकारक है अथवा हम उस की मंगलमयी सृष्टि में विघ्न करेंगे, तो वुह कभी उपेक्षा न करेगा ! क्योंकि वुह क्रोधी है ! इसी प्रकार शिवमूर्तियों में भी कई विशेषता हैं जिन के द्वारा हम यह उपकार लाभ कर सकते हैं । शिर पर गंगा होने का यह भाव है कि गंगा हमारे देश की संसार परमार्थ की सर्वस्व हैं ! पापी पुण्यात्मा सब की सुखदायिनी हैं !! भारत की सब संप्रदायों में माननीया हैं !!! (गंगा जी की महिमा अनेक ग्रंथों में वर्णित है ! जल तथा बालुका अनेक रोग नाश करती है ! अनेक नगरों की शोभा अनेक जीवों की पालना इन्हीं पर निर्भर है ! मरने पर माता पिता सब छोड़ देंगे पर गंगा माई अपने में मिला लेंगी इत्यादि अनेक बातें परम प्रसिद्ध हैं अतः इस विषय को यहां बहुत न बढ़ा के आगे चलते हैं) और भगवान भवानी भावन विश्वव्यापी हैं तो विश्वव्यापक की मूर्ति कल्पना में जगत का सर्वोपरि पदार्थ ही शिरस्थानी कहा जा सकता है ! पुराणों में गंगा जी की उत्पत्ति विष्णु भगवान के चरणारविंद से मानी गई है और शिव जी को परम वैष्णव लिखा है उस परम वैष्णवता

की पुष्टि इस से उत्तम और क्या हो सकती है कि यह उन के चरणोदक को शिर पर धारण करें ! योंही विष्णु देव को परम शैव कहा है कथा है कि लक्ष्मीपति सदा सहस्र कमल लेके पार्वतीपति की पूजा किया करते हैं एक दिन एक कमल घट गया तो उन्हों ने यह विचार के कि हमारा नाम पुंडरीकाक्ष है एक नेत्र रूपी पुंडरीक अपने इष्ट देव के पादपद्म पर अर्पण कर दिया ! सच है इस से अधिक शैवता और क्या होगी ! शास्त्रार्थ के लती ऐसे उपाख्यानों पर अनेक कुतर्क कर सकते हैं पर उन का उत्तर हम कभी पुराण प्रतिपादन में देंगे इस स्थल पर केवल इतना ही कहेंगे कि कविता पढ़े बिना ऐसे लेख समझना कोटि जन्म असंभव है ! हां इतना कह सकते हैं कि यह भगवान वैकुंठ नाथ की शैवता और कैलाशनाथ की वैष्णवता का अलंकारिक वर्णन है ! वास्तव में विष्णु अर्थात् व्यापक एवं शिव अर्थात् कल्याणमय यह दोनों एकही प्रेम स्वरूप के नाम हैं। पर उस का वर्णन पूर्णतया असंभव होने के कारण कुछ २ गुण एकत्र करके दो रूप कल्पना कर लिए गए हैं जिस में कवियों की वाणी को सहारा मिले ! हमारा प्रस्तुत विषय शिव मूर्ति है और वह शैव समाज का आधार है अतः इन अप्रतर्क्य विषयों का दिग्दर्शन मात्र करके अपने शैव भाइयों से पूछा चाहते हैं कि आप भगवान गंगाधर के पूजक होके वैष्णवों के साथ किस बीरते पर द्वेष रख सकते हैं? यदि धर्म से अधिक मत बाद प्रिय हो तो अपने प्रेमाधार को गंगाधर

अथच परम भागवत कहना छोड़ दीजिए! नहीं तो, सच्चा शैव वही हो सकता है जो वैष्णवमात्र को अपना देवता समझे। जब परम वैष्णव महादेव हैं तो साधारण वैष्णव देव क्यों न होंगे? इसी प्रकार यह भी समझने की बात है कि गंगाजी परम शक्ति हैं। इस से शाक्तों के साथ विरोध रखना भी अनुचित है! यद्यपि हमारी समझ में तो आस्तिक मात्र को किसी से द्वेष रखना पाप है! क्योंकि सब हमारे जगदीश ही की प्रजा हैं! इस नाते सभी हमारे बांधव हैं! विशेषत: शैव समूह को वैष्णव और शाक्त लोगों से विशेष संबन्ध ठहरा अत: इन्हें तो परस्पर महा मित्रता से रहना चाहिए! और सुनिए गाणपत्य हमारे प्रभु के पुत्र ही को पूजते हैं अत: इन के लिये भी सदा शिव से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि 'करहु कृपा शिशु सेवक जानी' सूर्यनारायण शिवशंकर का नेत्र ही हैं 'वंदे सूर्य शशांक वन्हि नयनं' फिर क्या नयन शरीर से अलग हैं जो तुम सूर्योपासकों को अपने से भिन्न समझते हो? भारत का क्या ही सौभाग्य था यदि यह पांचो मत एकता धारण कर के पंच परमेश्वर बनते! अस्तु अपने२ मत का तत्व समझेंगे तभी सही! शिवमूर्ति में अकेली गंगा कितनी हितकारिणी हैं इस पर जितना सोचियेगा उतना ही कल्याण है! अब दूसरी छवि देखिए।

बहुत सी मूर्तियों के पांच मुख होते हैं जिस से यह जान पड़ता है कि यावत् संसार और परमार्थ का तत्व तो

आप चार वेदों में पाइएगा पर यह मत समझिए कि वेद विद्या ही से उनका दर्शन भी मिल जायगा ! जो कुछ चार वेद बतलाते हैं उस से भी उन का रूप गुण अधिक है ! वेद उन की वाणी है पर चार पुस्तकों ही पर उन की वाणी समाप्त नहीं हो गई ! एक मुख और है एवं वुह सब के ऊपर है ! जिस की मधुर वाणी केवल प्रेमी सुनते हैं ! विद्याभिमानी जन बहुत होंगा चार वेद द्वारा चार फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) प्राप्त कर लेंगे ! पर वुह पंचम मुख संबंधी सुख औरों के लिए है ! जिसने चारों ओर से अपना मुख फेर लिया है वही प्रेममय मुख का दर्शन पाता है ।

तीन नेत्र से यह अभिप्राय है कि वह त्रैलोक्य एवं त्रिकाल के लोगों के त्रिगुणात्मक (सात्विक राजस तामस) तीनों प्रकार के (कायिक वाचक मानसिक) भावों को देखते हैं ! सूर्य, चंद्रमा, अग्नि उन के नेत्र हैं अर्थात् उन का बिचार करनेवाले के हृदय में प्रकाश होता है ! उन की आंखों देखने वाले (सर्वथा उन्हीं के आश्रित) को आनंद मिलता है ! शीतलता प्राप्त होती है ! उन के बिमुख जला करते हैं ! या यों समझ लो कि वे आंख उठाते ही हमारे पाप ताप शाप दुःख दुर्गुण दुराशा सब को भस्म कर देते हैं ।

उन के मस्तक पर दुइज का चंद्रमा है अर्थात् जो कोई अपने को महा चीण अति दीन समझता है 'पाप पीनस्य दीनस्य कृष्ण एक गतिर्मम्' जिस के मन बचन से सदा निकला करता है ! वही भगवान की शिरोधार्य है ! 'बंदौं सीताराम पद जिन्हें परम प्रिय खिन्न' !

यही भाव। कपाल माला से भी है जो जीते हुए मृतकवत रहते हैं—अर्थात् अपने जीवन को कुछ समझते ही नहीं! पराए लिए निज प्राण तृणवत समझते हैं! वही लोग उन के गले का हार हैं।

चिता भस्म सदृश अपने को निरा निकम्मा महा अपावन समझो। तो वुह तुम्हें अपना भूषण समझेंगे! जब तुम सच्चे जी से अपने अपने पापों को स्वीकार करलोगे। गद्-गद् स्वर से कहोगे कि हे प्रभो! हम सर्प हैं! संसार के दिखाने मात्र को ऊपर से चिकने २ कोमल २ बने रहते हैं। पर भीतर (हृदय में) विष (कुवासना) ही भरा है। 'मो सम कौन कुटिल खल कामी। तुम से काह छिपी करुना निधि! सब के अंतरजामी॥ इत्यादि' कहने ही से वुह तुम्हें अपनावेंगे!!! यदि हम को यह अभिमान हो कि हम पूरे नक्षत्र नायक के समान कीर्तिमान हैं! तो संसार को चाहे जैसी चमक दमक दिखा लें! पर हैं वास्तव में कलंकी! हमारा अस्तित्व दिन२ क्षीण होने वाला है! ऐसे अहंकारी को भोलानाथ कभी अंगीकार न करेंगे। उन्हें तो वही प्यारा है। वे तो उसी को वृद्धि करेंगे। उसी को निष्कलंक बनावेंगे! जो शशि सम होने पर भी दीनता स्वीकार करे! चंद्रशेखर नाम का यह भी भाव है कि 'चद् आह्लादने' धातु से चंद्र शब्द बनता है और सच्चा सुख प्रेम ही में होता है। एवं नित्य वर्द्धमान, निष्कलंक, अमृत मय होने से द्वितीया के चंद्रमा से प्रेम का सादृश्य भी है इस

से यह अर्थ हुआ कि जिस के गुणों का सर्वोपरि भूषण प्रेम है वही चंद्रमौलि है !!! शिव चिता भस्मधारी हैं इस से उन के उपासक भी भस्म लगाया करते हैं जिस से बहुतेरे डाक्टरों के मतानुसार शरीर के अनेक रोग नाश होते हैं ! और बिजुली की शक्ति बढ़ती है पर आत्मा को भी यह लाभ होसकता है कि जब २ अपने शरीर को देखेंगे तब २ प्रभु के चिता भस्म लेपन की सुध होगी और चिता का ध्यान होते ही संसार की अनित्यता का स्मरण बना रहेगा ! अगले बुद्धिमानों का वचन है कि 'ईश्वर और मृत्यु को सदा याद रखना चाहिए, ! इस से बहुतेरी बुराइयां छुटी रहती हैं ! इसी भांति रुद्राक्ष एवं बड़े २ बाल भी स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हैं पर यह विषय अन्य है अत: केवल वर्णनीय विषय लिखा जाता है।

शिवमूर्ति के गले में विष की श्यामता का चिन्ह होता है जब समुद्र के मथने के समय महा तीक्ष्ण हलाहल निकला और कोई उस की भार न सह सका तब आप उसे पान कर गए ! तभी से गरल कंठ कहलाते हैं इस पर श्री पुष्पदंताचार्य ने कितना अच्छा सिद्धांत निकाला है कि 'विकारोपिश्लाघ्यो भुवन भयभंग व्यसनिनां' यहां हम शिव भक्तों से प्रश्न करेंगे कि जब हमारे प्रभु ने जगत की रक्षा के हेतु विष तक पी लिया है तो हमें निज देश के हितार्थ क्या कुछ भी कष्ट अथवा हानि न सहनी चाहिए ?

उन के एक हाथ में त्रिशूल है अर्थात् दैहिक दैविक

भौतिक दुःख उन की मुट्ठी में हैं! फिर उन के भक्त संसार से क्यों न निर्भय रहें! उस सर्व शक्तिमान के पंजे से छूटेंगे तब हम पर चोट करेंगे! भला यह कब सम्भव है? हमारा प्रभु हमारी रक्षा के अर्थ सदा शस्त्र धारण किए रहता है फिर हम क्यों डरें! हमारे विश्वनाथ त्रिशूल प्रहारक हैं अतः हमें कोई निष्कारण सतावैगा वुह कहां बच के जायगा? हमारा या यों कहो कि संसार के शुभचिंतकों का शत्रु पृथिवी स्वर्ग पाताल कहीं न बचेगा! भगवान का नाम ही त्रिपुरारि है अर्थात् त्रैलोक्य के असुर प्रकृति वालों का शत्रु हां प्रिय शैव गण! यदि तुम में कोई भी आसुरी प्रकृति हो स्वार्थ के आगे देश की चिंता न हो! देशी भाइयों से द्वेष हो! आलस्य हो! दंभ हो! पर संताप हो! तो डरो सृष्टि संहारक के त्रिशूल से! और यदि सरलता के साथ उन के चरण और सदाचरण में श्रद्धा है तो समस्त सूल को वे स्वयं प्रहार कर डालेंगे। कभी २ कालचक्र की गति से सच्चे शैव को भी रोग वियोगादि शूल दुख देते हैं पर उसे संसारी लोगों की भांति कष्ट नहीं होता! क्योंकि निश्चय रहता है कि यह प्रेमपात्र का चोचला मात्र है! न जाने किस उमंग में आके त्रिशूल दिखला दिया है पर हम पर चोट कदापि न करेंगे।

दूसरे हाथमें डमरू है पंडित लोग जानते हैं कि व्याकरणादि कई विद्याओं के अइउणऋलृकादि मूल सूत्र इसी डमरू के शब्द से निकले हैं यह इस बात का इशारा है कि

सब विद्या उन की मूठी में हैं! पर हमारी समझ में एक बात आती है कि यदि वे केवल त्रिशूलधारीही होते तो हम निर्बलों को केवल उन का भय होता इसी लिए एक बाजा भी पास रखते हैं जिस में हमें निश्चय रहे कि निरे न्यायी निरे दुष्ट दमन, निरे युद्ध प्रिय ही नहीं हैं बरंच अपने लोगों के लिए गान रसिक भी हैं! मनुष्य की मनोवृत्ति गाने बजाने की ओर आप ही खिंच जाती है फिर भला जिसकी ओर चित्त लगाना हमें परमावश्यक है वुह प्रभु हमारे चित्त को अपनी ओर खींच ने के अर्थ गान प्रिय क्यों न हो! सैकड़ों बार देखा गया है कि कभी २ किसी कारण के बिना भी हमारा मन उन के निकट जा रहता है इस का कारण यही है कि उन का रूप गुण स्वभाव हृदयग्राही है! धन्य है उस पुरुष रत्न का जीवन जिस के मन की आखों में सदा उन की छवि बसती है! और अंतः करण के कारण में नित्य प्रेम डमरू की ध्वनि पूरी रहती है! संसार में जितने सुहावने शब्द सुनाई देते हैं सब उसी डमरू के शब्द हैं! क्योंकि सब को उन्हीं के हाथ का सहारा है।

कोई २ मूर्ति अर्द्धांगी होती है अर्थात् एक ही मूर्ति में एक ओर शिव एक ओर पार्वती देवी ऐसी झांकी से यह अकथ्य महिमा बिदित होती है कि वुह अष्ठ प्रहर अपनी प्यारी को बामांक में धारण करने पर भी योगीश्वर एवं मदनांतक हैं! क्या यह सामर्थ्य किसी दूसरे को हो सकती है? हां जिस पर उन्हीं की बिशेष दया हो। धन्य प्रभो!

'यह दूध और खटाई की एकत्र स्थिति तुम्हीं कर सकते हो' हमारी कवि समाज के मुकुटमणि गोस्वामी तुलसी दास जी ने जनक महाराज की प्रशंसा में कहा है कि 'योग भोग महं राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥' यदि गोस्वामी महाराज का हम से दैहिक संबंध होता तो उन से एक ऐसी चौपाई अनुरोध पूर्वक बनवाते कि 'योग भोग दोउ प्रगट दिखाई। सूचत भांति अतर्क्य प्रभुताई' हमारे कान्यकुब्ज भाई अधिक तर शैव ही हैं परदेश के दुर्भाग्य से ऐसी प्रतिमा देखके यह उपदेश नहीं सीखते कि 'जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति। जो नारी सोइ पुरुष है यामे कछु न विभक्ति' नहीं तो शैवों का यह परम कर्तव्य है कि अपनी गृहदेवी से इतना स्नेह करें कि 'एक जान दो क़ालिब' बनजायं! और व्यभिचार के समय यह ध्यान रक्खें कि हमारे भोला बाबा ने जिस काम-देव को भस्म कर दिया है यदि हम उसी भस्मावशिष्ठ मन्मथ के हरायल बन जांयगे तो हर भगवान को क्या मुंह दिखा-वैंगे!!!

कोई २ प्रतिमा वृषभारूढ होती है पर वृषभका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं यहां केवल इतना और कहेंगे कि नंदिकेश्वर ही की प्रीति के वश वे पशुपति अर्थात् पशुओं के पालनेवाले कहाते हैं अतः पशुओं का पालन विशेषतः वृषभ तथा उसकी अर्धांगिनी का पोषण शैवों का परम धर्म है!

शिव मूर्ति क्या है और कैसी है यह तो बड़े २ ऋषि भी नहीं कह सकते पर जैसी बहुत सी प्रतिकृति देखने में आती है उनका कुछ २ वर्णन किया गया यद्यपि कोई बड़े बुद्धिमान इस विषय में लिखते तो बहुत सी उत्तमोत्तम बातें निकलतीं पर इतना लिखना भी कुछ तो किसी का हित करेहीगा ! मरने के पीछे कैलाशवास तो विश्वास की बात है हमने न कभी कैलाश देखा है न देखने वाले से भेंट तथा पत्रालाप किया है हां यदि होगा तो प्रत्येक मूर्ति पूजक को हो रहेगा ! पर हमारी इस अक्षर मयी मूर्ति के सच्चे सेवकों को संसार ही में कैलास का सुख प्राप्त होगा ! इस में संदेह नहीं है ! क्योंकि जहां शिव हैं वही कैलाश है तो जब हमारे हृदय में शिव होंगे तो हृदय नगर कैलाश क्यों न होगा ? हे विश्वपते ! कभी इस मनोमंदिर में विराजोगे ! कभी वुह दिन दिखाओगे कि भारतवासी मात्र तुम्हारे हो जांय और यह पवित्रभूमि कैलाश बने !

जिस प्रकार अन्य धातु पाषाणादि मूर्तियों का नाम श्रीरामनाथ, वैद्यनाथ, आनन्देश्वर, खिरेश्वरादि होता है वैसे इस अक्षरमयी मूर्ति के भी कई नाम हैं हृदयेश्वर, मंगलेश्वर, भारतेश्वर इत्यादि पर मुख्यनाम प्रेमेश्वर है अर्थात् प्रेम मय ईश्वर ! इन का दर्शन भी प्रेमचक्षु के बिना दुर्लभ है ! जब अपनी अकर्मण्यता और उनके उपकारों का ध्यान जमेगा तब अवश्य हृदय उमड़ेगा और नेत्रों से अश्रुधारा बह चलेगी ! उसी धारा का नाम प्रेम गंगा है इन्हीं प्रेम गंगा के

जल से स्नान कराने का महात्म्य है। हृदय कमल चढ़ाने का अक्षय पुण्य है। यह तो इस मूर्ति की पूजा है जो प्रेम बिना नहीं हो सकती। पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जब मन में प्रेम होगा तभी संसार के यावत् मूर्तिमान तथा अमूर्तिमान पदार्थ शिवमूर्ति अर्थात् कल्याण का रूप निश्चित होंगे। नहीं तो सोने औ हीरे की भी मूर्ति तुच्छ है। यदि उससे स्त्री का गहना बनवाते तो उस की शोभा होती-तुम्हें सुख होता आड़े बारे में नाम होता बिपत्ति में काम होता पर मूर्ति से तो कुछ भी न होगा। फिर मृत्तिकादि का क्या कहना है वह तो तुच्छ हई हैं। केवल प्रेम ही के नाते ईश्वर हैं नहीं तो घर की चक्की से भी गए बीते। यही नहीं प्रेम के बिना ध्यान ही में क्या ईश्वर दिखाई देगा? जब चाहो आखें मूंद के अन्धे की नकलकर देखो अंधकार के सिवाय कुछ सूझे तो कहना। वेद पढ़ने से हाथ मुंह दोनों दुखेंगे। अधिक श्रम करोगे दिमाग में गरमी चढ़जायगी। अस्तु! इन बातों के बढ़ाने से क्या है, जहां तक सहृदयता से विचारिएगा वहां तक यही सिद्ध होगा कि प्रेम के बिना वेद झगड़े की जड़! धर्म बे सिर पैर के काम! स्वर्ग शेखचिल्ली का महल और मुक्ति प्रेत की बहिन है! ईश्वर का तो पताही लगना कठिन है, ब्रह्मशब्दही नपुंसक अर्थात् जड़ है! उस की उपमा आकाश से दी जाती है 'खम्ब्रह्म' और आकाश है शून्य। पर हां यदि मनोमंदिर में प्रेम का प्रकाश हो तो सारा संसार शिव मय है क्योंकि, प्रेम ही

वास्तविक शिवमूर्ति अर्थात् कल्याण का रूप है। जब शिव मूर्ति समझ में आ जायगी तब यह भी जान जावगे कि उस की पूजा जो जिस रीति से करता है अच्छा ही करता है। पर तौ भी शिवपूजा की प्रचलित पद्धति का अभिप्राय सुन रखिए जिससे जान जाइए कि मूर्तिपूजन कोई पाप नहीं है!

शिवजी की पूजा में सब बातें तो वही हैं जो सब देवताओं की पूजा में होती हैं और सब प्रतिमापूजक समझ सकते हैं कि स्नान चंदन पुष्प धूप दीपादि मंदिर की शोभा और सुगंधि प्रसारण के द्वारा चित्त की प्रसन्नता के लिए हैं जिस में ध्यान करती बेला मन आनंदित रहे क्योंकि मैले कुचैले स्थान में कोई काम करो तो जैसे नहीं होता! नैवेद्येत्यादि इसलिए हैं कि हम अपने इष्ट को खाते पीते सोते जागते सदा अपने साथ समझते हैं! स्तुति प्रार्थनादि उन की महिमा और अपनी दीनता का स्मरण दिलाने को हैं पर शिवपूजा में इतनी बातें विशेष हैं एक तो मदार के फूल धतूरे के फल इत्यादि कई एक ऐसे पदार्थ चढ़ाए जाते हैं जो बहुधा किसी काम में नहीं आते इस से यह बात प्रदर्शित होती है कि जिस को कोई न पूछे उसे विश्वनाथ हो स्वीकार करते हैं। अथवा उन की पूजा के लिए ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है जिन में धन की आवश्यकता हो क्योंकि वे निर्धनों का धन हैं उन्हें केवल सहज में मिलनेवाली वस्तु भेंट कर दो वे बड़े प्रसन्न हो जायंगे क्योंकि अकृत्तिमता उन्हें प्रिय है।

दूसरे विल्वपत्र चढ़ाने का भाव 'त्रिदलं त्रिगुणाकारं' इत्यादि श्लोक ही से प्रगट है अर्थात् सतोगुण रजोगुण तमोगुण जो हमारी आत्मा के अंग हैं उन को भेंट कर देना। यहां तक उन से दूर रहना कि उन्हें शिव निर्माल्य बना देना! जैसी कि भगवान कृष्णचन्द्र की आज्ञा है 'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' अर्थात् अपना मन उसी पर निछावर कर देना! बस यही तो धर्म की परा काष्ठा है!

तीसरे मूर्ति की चढ़ी हुई वस्तु नहीं ली जाती इसका प्रयोजन यह है कि हमारा उनका कुछ व्यवहार तो हई नहीं कि लौटा लेने के लिए कोई वस्तु देते हों वे तो हमारे मित्र हैं 'प्राज्ञो मित्रः' और मित्र को कोई वस्तु भेंट करके फेर लेना क्या!

चौथी बात है गाल बजाना जिसका तात्पर्य्य पुराणों में सबने सुना होगा कि दक्ष प्रजापति के यज्ञ में शिव का भाग न देख के जब सती जी ने योगानल में अपनी देह दाह कर दी तब शिव के गणों ने यज्ञ विध्वंस कर डाली और अशिव याजक (दक्ष) का शिर काट के हवन कुंड में स्वाहा कर दिया पीछे से सब देवताओं की रुचि रखने को उस के धड़ में बकरे का शिर लगा के पुनर्जीवन दिया गया औ उस ने उसी मुख से स्तुति की इसी के स्मरण में आज तक गलमंदरी बजाई जाती है इस आख्यान में दो उपदेश हैं। एक तो यह कि सती अर्थात् पूजनीया पतिव्रता वही स्त्री है जो अपने प्यारे पति की प्रतिष्ठा के आगे सगे बाप तथा

अपनी देह तक की पर्वा न करें ! वही विश्वेश्वर की प्यारी होती हैं ! दूसरे यह कि शिव विमुख होके अपनी दक्षता का अभिमान करनेवाला यज्ञ भी करे तो भी अनर्थ ही करता है ! वह प्रजा पति ही क्यों न हो पर वास्तव में मृतक है ! पशु है ! वरंच पशु से भी बुरा नर के रूप में बकरा है ! यह तो पुराणोक्त ध्वनि है पर हमारी समझ में यह आता है कि जिन कल्याणकारी हृदय विहारी की महिमा कोई महर्षि भी नहीं गान कर सकते वेद स्वयं नेति २ कहते हैं श्रीपुष्पदंत जी ने जिन की स्तुति में यह परम सत्य वाक्य लिखा है कि—

काजर के गिरि पर्वत को मसि भाजन सर्व समुद्र बनावै ।
लेखनि देवतरून की डारहि कागद भूमिहि को ठहरावै ॥
या विधि सारद क्यों न प्रताप सदा लिखिबे महं बैस बितावै ।
नाथ ! तहू तुम्हरी महिमा कर कैसेहु ने कहु पार न आवै ॥१॥

उन की स्तुति करने का जो क्षुद्र मानव विचार करे वुह गाल बजाने अर्थात् बेपर की उड़ाने के सिवा क्या करता है ? इसी बात की सूचनार्थ स्तुति के दो एक श्लोक पद के गाल से शब्द किया जाता है कि महाराज ! तुम्हारी स्तुति तो हम क्या कर सकते हैं यों ही कहो गाल बजाया करें ! प्रसिद्ध है कि ऐसा करने से भवानी पति बड़े प्रसन्न होते हैं, भला सच्ची बात और युक्ति के साथ कही जायगी तो कौन सहृदय न प्रसन्न होगा ? फिर वे तो सहृदय समाज के आदि-देव (गणेश जी) के भी पिता हैं !

यद्यपि हमारा कोई मत नहीं है क्योंकि हमारे परम गुरु श्री हरिश्चन्द्र ने हमें यह सिखलाया है कि 'मत का अर्थ है नहीं' पर जब हम अपने पश्चिमोत्तर देश की ओर देखते हैं तो एक बड़े भारी समूह को शैवही पाते हैं हमारे ब्राह्मण भाई विशेषतः कान्यकुब्ज तिस पर भी षट्कुलस्थ कदाचित सौ में निन्नानबे इसी ओर हैं इधर रहनेवाले गौड़ सारस्वत भी तीन भाग से अधिक शैवही हैं! क्षत्रियों में राजपूत सौ में पांच से अधिक दूसरे मत के न होंगे! खत्री भी फी सैकड़ा दो ही चार हों तो हों। वैश्यों में हमारे ओमर दोसरों की भी यही दशा है! हां अग्रवाल थोड़े होंगे। कायस्थ तो सौ में क्या सहस्र में दो चार होंगे जो शिवोपासक न हों! इस से हमारा यह कहना कदापि झूठ न होगा कि हमारे यहां तीन भाग से अधिक इसी ढर्रे में चल रहे हैं! वेद में भी यदि कुछ ऋचा विष्णु इत्यादि नामों से स्तवन करती हैं तो बहुत सी ऋचाएं हमारे भोला बाबा ही की गीत गाती हैं! (नमः शंभवायच मयोभवायच नमः शंकरायच मयस्करायच नमः शिवायच शिवतरायच) ऐसा दूसरे नामों से भरा हुआ मंत्र कदाचित कोई ही हो! इस के अतिरिक्त इस मार्ग में अकृतिमता बहुत है! बड़े कट्टर बना चाहो तो नहा के तीन उंगली भस्म में डुबो के माथे पर रगड़ लिया करो न जी चाहे तो यह भी न सही पूजा भी केवल लोटा भर पानी तक से हो सकती है! जिस में निरी अकृतिमता, धोती, नेती, कंठी, माला, कुछ न देखिए

उसे ज्ञान ज्ञाइए शैव है ! हमारे बहुत से मित्र आर्य्यसमाजी हैं बहुतेरे अंगरेजी ढंग के हैं बहुतेरे हमारे ऐसे हैं वे भी कभी लगावेंगे तौ त्रिपुंड ही लगावैंगे ! माला या कंठा रुद्राच्च ही को पहिनेगे ! फिर हमारी तबीयत क्यों न इस सीधी चाल पर झुके ? क्यों न हमारे मुंह से बेतहाशा निकलै बुबुबुबुबुबुबु बोम महादेव कैलाशपती: टन् टन् टन् नेति नेति नेति ।



विद्यार्थी

भूगोलसंग्रह ।

—*—

आज तक जितने भूगोल के ग्रन्थ छपे हुए हैं उन सबों को देख कर यह भूगोल बनाया गया है। इस में सहज रीति से इम्तिहान में पास होने के लिये हरएक विषय को ग्रन्थ के प्रारंभ में इकट्ठा कर के लिखा है जैसे अंगरेज़ों की हवा खाने की जगह, कोईले और सोने की खानि आदि हर एक कमिश्नरी का खबरा चक्र में लिखा गया है और आज तक के जितने सवाल मिडल स्कूल वा अपरप्राइमरी में दिये गये हैं उन सबों को इकट्ठा कर लिखा है। कहां२ की कौन २ वस्तु प्रसिद्ध हैं। तीर्थ स्थान, क़िला और छावनी की जगह आदि परीक्षा के योग्य सब वस्तु चुनी गई हैं। आद्योपांत देखनेही से भूगोल हस्तामलक हो जायगा। आज तक जितने भूगोल बने हैं सबों से यह हरएक विषय में बढ़ा है ३२० पेज की किताब है और मूल्य केवल ।≠) आने हैं। डाक महसूल अलबत्ते एक आना है। पुस्तक भी थोड़ी ही छपी है यदि इम्तिहान में अवश्य पास करना है तो षट आना के लिये जो में खटपट मत कीजिये नहीं तो इम्तिहान में कोई ऐसा उपकारक भूगोल नहीं है जो इस की बराबरी करे और न ऐसी सस्ती कोई पुस्तक मिलेगी। जब आप पुस्तक देखेंगे तो खुद यह बात जो में बैठ जायगी। यदि भूगोल का प्रचार हुआ तो हिसाब वग़ैरह की ऐसी ही सस्ती पुस्तकें विद्यार्थियों के हित बनाई जायगी।

यह किताब नीचे लिखे नाम की दूकानों पर मिलती हैं:—

रमेशचन्द्र सूर बुकसेलर बांकीपुर।

कालीपदो सूर बुकसेलर बांकीपुर।

मुहम्मद इसहाक़ कुतुबफ़रोश बांकीपुर।